प्रवचन–13, गाथा–320 (परमागम मन्दिर)

समयसार, 320 गाथा। अब शिष्य पूछता है, इसका अर्थ यह है कि जिसे सुनने की गरज है, वह पूछता है। सुनने के लिए सुनने आना, वह अलग बात है और अपने आत्मा के लिए सुनना... यह बात कहते हैं। **अब, प्रश्न होता है कि ज्ञानी कर्ता–भोक्ता नहीं है,....** ऐसी अन्दर जिज्ञासा हुई है। उस धर्मी की पद्धति क्या है? उसका प्रकार क्या है? ऐसी जानने (की) जिज्ञासा है। **इसका उत्तर दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं :–** जिसे यह सुनने की जिज्ञासा है, उसे यहाँ उत्तर दिया जाता है – ऐसी शैली की है।

दिट्ठी जहेव णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव।
जाणइ य बंध-मोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव।। ३२० ।।

ज्यों नेत्र, त्यों ही ज्ञान नहिं कारक, नहीं वेदक अहो।
जाने हि कर्मोदय, निरजरा, बंध त्यों ही मोक्ष को॥320॥

टीका.... पहले दृष्टान्त देते हैं। पूछना क्या है कि आत्मा यह सब करता है, वेदने में आता है यह सब... तुम कहते हो कि आत्मा कर्ता नहीं और भोक्ता नहीं, पर को कर्ता नहीं और राग को भोक्ता नहीं, यह क्या चीज? यह क्या इसकी आश्चर्यता? इसका स्वभाव ऐसा विस्मयकारी क्या है? ऐसे शिष्य को जानने की जिज्ञासा हुई है, उसे कहते हैं।

जैसे इस जगत में.... पहले जगत सिद्ध किया। यह जगत है। **इस जगत में....** अस्ति सिद्ध की, जगत की अस्ति सिद्ध की। उसमें **नेत्र दृश्य पदार्थ से अत्यन्त...** नेत्र जो आँख है, (वह) देखने योग्य **पदार्थ से अत्यन्त भिन्नता के कारण....** आँख जिसे देखती है, वह देखनेवाले पदार्थ से आँख तो अत्यन्त भिन्न है।

अत्यन्त भिन्नता के कारण उसे करने-वेदने (–भोगने) में असमर्थ होने से,... सिद्धान्त यह कहा। आँख प्रत्येक पदार्थ से अत्यन्त भिन्न है, प्रत्येक पदार्थ से आँख भिन्न है, वह आँख भिन्न को करे और भोगे कैसे? अपने में हो उसे करे और भोगे, परन्तु पर को करे और भोगे (किस प्रकार?) वह तो अत्यन्त भिन्न है। जिसे आँख स्पर्श भी नहीं करती, उसे करे-भोगे – यह कैसे बने? **अत्यन्त भिन्नता के कारण उसे करने-वेदने (–भोगने)**

में असमर्थ होने से,... आँख, जगत की चीज को देखे, तथापि आँख से जगत की चीज कुछ की नहीं जाती तथा भोगी नहीं जाती।

वह **दृश्य पदार्थ को न तो करता है....** उस देखनेयोग्य पदार्थ को आँख करती **और न भोगता है...** आहा...हा...! गाथा है ... **यदि ऐसा न हो तो....** यदि आँख करे और भोगे तो। कर्ता-भोक्ता भिन्न पदार्थ को नहीं। कर्ता-भोक्ता होवे तो **अग्नि को देखने, संधु–क्षण की भाँति,...** अग्नि सुलगानेवाला, अग्नि चेतानेवाला, अग्नि चेतती है; उससे अग्नि चेतती है, ऐसा। **अपने को (–नेत्र को) अग्नि का कर्तृत्व...** आँख को सुलगानापना आयेगा। जैसे संधुक्षण अग्नि को सुलगाता है, वैसे आँख, पर से भिन्न होने पर भी, उसे करे और भोगे तो सुलगानापना आयेगा, तो आँख को सुलगानापना (आयेगा)। आँख ऐसे पड़े वहाँ दूसरा सुलगना चाहिए, आँख को सुलगानापना आयेगा।

और लोहे के गोले की भाँति अपने को (नेत्र को) अग्नि का अनुभव दुर्निवार होना चाहिए.... आँख, भिन्न चीज को देखनेमात्र से उसे भोगे तो जैसे लोहे का गोला अग्नि में उष्ण हो जाता है; इसी प्रकार आँख भी अग्निमय हो जायेगी। आहा...हा...! **अग्नि का अनुभव दुर्निवार होना चाहिए....** आँख को भिन्न चीज का अनुभव का भाव (प्रसंग) आ जायेगा। **(अर्थात् यदि नेत्र दृश्य पदार्थ को करता और भोगता हो....)** आँख है, वह दूसरी चीज को... आहा...हा...! किसी भी चीज को कर्ता-भोक्ता होवे तो **(नेत्र के द्वारा अग्नि जलनी चाहिए...)** आँख के द्वारा अग्नि (सुलगनी चाहिए)। संधुक्षण जैसे कर्ता है, वैसे आँख ऐसा करे वहाँ अग्नि होनी चाहिए। यदि अग्नि और वे भिन्न पदार्थ, इन्हें ऐसा सम्बन्ध होवे तो आँख ऐसे हो वहाँ सुलगना चाहिए। आहा...हा...!

(यदि नेत्र दृश्य पदार्थ को करता और भोगता हो तो नेत्र के द्वारा अग्नि जलनी चाहिए...) आँख द्वारा अग्नि होना चाहिए। जैसे वह संधुक्षण अग्नि को सुलगाता है, वैसे आँख जहाँ पड़े, वहाँ सुलगना चाहिए। आहा...हा...! **(और नेत्र को अग्नि की उष्णता का अनुभव अवश्य होना चाहिए;...)** आँख है, वह अग्नि को देखती है परन्तु अग्नि का अनुभव नहीं है, यदि उसमें एकाकार होवे तो अनुभव होगा। वह तो भिन्न चीज है। आँख और जो चीज अग्नि है, वह तो भिन्न है। भिन्न को अग्नि करती भी नहीं और भिन्न को अग्नि

भोगती भी नहीं, यह तो अभी दृष्टान्त है। आहा...हा...!

(किन्तु ऐसा नहीं होता,...) आँख से सुलगता नहीं और आँख, पर को भोगता नहीं। **(नेत्र को अग्नि की उष्णता का अनुभव अवश्य होना चाहिए; किन्तु ऐसा नहीं होता, इसलिए नेत्र दृश्य पदार्थ का कर्ता–भोक्ता नहीं है)**.... आँख है, वह देखनेयोग्य पदार्थ को... देखनेयोग्य इतना सम्बन्ध अवश्य, परन्तु तदुपरान्त उसे सुलगावे या जलावे, तब तो स्वयं अग्निमय हो जाये। आँख, अग्निमय होकर जल जाये और ऐसे आँख पड़े, वहाँ अग्नि होना चाहिए। आहा...हा...! **(किन्तु ऐसा नहीं होता, इसलिए नेत्र दृश्य पदार्थ का कर्ता भोक्ता नहीं है)**.... आँख देखनेयोग्य पदार्थ को... देखनेयोग्य पदार्थ का सम्बन्ध रखा, परन्तु तदुपरान्त उसे सुलगावे और जलावे – ऐसा नहीं हो सकता।

किन्तु केवल दर्शनमात्रस्वभाववाला होने से... आँख तो केवल (देखने के) स्वभाववाला होने से। आहा...हा...! **वह (नेत्र) सबको मात्र देखता ही है;...** इसी प्रकार आत्मा भी... आहा...हा...! **स्वयं (नेत्र की भाँति) देखनेवाला होने से...** देखनेवाला है। व्यवहार से पर को देखनेवाला है। जैसे आँख, पर को देखती है; वैसे आत्मा, पर को देखता अवश्य है। जिस काल में जो चीज है, उस काल में उसे आँख देखती है, वैसे आत्मा भी उसे देखता अवश्य है। आहा...हा...! देखने के उपरान्त करना और भोगना, उसमें नहीं होता। देखने का सम्बन्ध है, यह एक बात तो ली है। आँख देखती है, वह अग्नि को करती नहीं, वैसे ही आत्मा देखता तो है; देखता नहीं – ऐसा नहीं है। आहा...हा...!

आत्मा अर्थात् ज्ञान भी **स्वयं (नेत्र की भाँति) देखनेवाला होने से...** इतना लिया। ज्ञान, पर को देखता है, इतना लिया। यद्यपि पर को देखता है, यह अभी व्यवहार है, तथापि इतना सम्बन्ध लिया। तो जैसे पर को देखता है – ऐसा व्यवहार है तो पर को करे – ऐसा भी व्यवहार होना चाहिए। आहा...हा...! ऐसा नहीं है। आहा...हा...! आँख से देखने का सम्बन्ध है; इसलिए कहीं आँख दूसरे को सुलगावे या दूसरे को भोगे (– ऐसा नहीं है।) वैसे आत्मा को, देखने का सम्बन्ध है... आहा...हा...! इतना तो लिया।

देखनेवाला होने से... आहा...हा...! **(नेत्र की भाँति) देखनेवाला होने से कर्म**

से अत्यन्त भिन्नता के कारण.... जैसे अग्नि, परपदार्थ से भिन्न है, उसे देखती है, तथापि उससे सुलगती, जलती नहीं; इसी प्रकार आत्मा, कर्म को देखे अवश्य। आहा...हा...! **कर्म से अत्यन्त भिन्नता के कारण....** अकेला भिन्न नहीं लिया, प्रभु! चैतन्य ज्ञानस्वरूप भगवान (आत्मा), परपदार्थ से अत्यन्त भिन्नता के कारण। देखनेवाला होने पर भी... इतनी बात है। उसमें आया था। एक जब स्वयं करता है तो फिर साथ में पर का भी करे। कर्ता है न? अपना किए बिना रहता है? यह आ गया था। कर्ता है तो भी पर को तो कर्ता-भोक्ता नहीं। अपने परिणाम को भले ही करे और भोगे। आहा...हा...! यहाँ निर्मल परिणाम तो करे और भोगे उसकी बात है, मलिन की बात नहीं है।

आत्मा, नेत्र की भाँति पर के साथ देखने के सम्बन्धमात्र से पर को देखे; इसलिए पर का कुछ करे,... पर का देखना, ऐसा तो इसका सम्बन्ध है परन्तु देखना सम्बन्ध है, इसलिए कुछ करे (– ऐसा बिल्कुल नहीं है)। आहा...हा...! हाथ को हिलावे, पैर को हिलावे, आँख को हिलावे, बोले,... जो चीज है, उसे देखता है। परन्तु देखने पर भी जो चीज देखे, वही देखे बराबर, उसके परिणाम में वही देखने का बराबर आवे। ऐसा होने पर भी... आहा..हा...! वह देखनेवाला होने पर भी, **कर्म को न तो करता है....** आहा...हा...! रागादि, कर्म आदि को करता नहीं। उन्हें करता नहीं कहा, क्यों नहीं करता – ऐसा नहीं कहा। ज्ञान कहा न? ज्ञान अर्थात् आत्मा। ज्ञान, ऐसे देखने का-जानने का सम्बन्ध इतना कहते हैं, तथापि देखनेमात्र के उपरान्त उसे करना और भोगने का, **कर्म से अत्यन्त भिन्नता के कारण निश्चय से उसके करने-वेदने (भोगने) में असमर्थ होने से,...** आहा...हा...! जीव ज्ञानस्वरूप होने से उसे कर्म का उदय होता है, उसे देखता है। देखने के सम्बन्धमात्र से कर्म के उदय को भोगे या करे – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! अभी तो चार बोल लेंगे।

कर्म को न तो करता है और न वेदता है,.... आहा...हा...! पर को जानने-देखने का सम्बन्ध होने पर भी, पर को करता और भोगता बिल्कुल नहीं है। आहा...हा...! यह सब पूरे दिन धन्धा-व्यापार धमाल चलती है न? दुकान पर बैठा, कहते हैं कि आत्मा को और उसे देखनेमात्र का सम्बन्ध है। देखने के अतिरिक्त उसे करने और भोगने का बिल्कुल

स्वभाव नहीं है। आहा...हा...! जैसे आँख, अग्नि को नहीं करती; वैसे भगवान आत्मा, कर्म और कर्म से प्राप्त चीजें, इन किसी चीज को-कर्म को करता-भोगता नहीं तो पर की तो क्या बात करना? आहा...हा...! करता और भोगता नहीं है।

किन्तु केवल ज्ञानमात्रस्वभाववाला.... आहा...हा...! केवल ज्ञानस्वभाववाला **–जानने के स्वभाववाला होने से...** भगवान तो जानने के स्वभाववाला है, बस! पूरी दुनिया को देखे। आहा...हा...! विषय-वासना के काल में संयोग को देखे। आहा...हा...! तथापि उस विषय-वासना को करता नहीं और सन्मुख चीज को जो भोगता है – ऐसा दिखता है, उसे वह आत्मा करता नहीं। आहा...हा...! **केवल ज्ञानमात्रस्वभाववाला....** एकान्त नहीं कहा? केवल ज्ञान लिया, अकेला ज्ञानस्वभाव। कथंचित् ज्ञानस्वभाव और कथंचित् कर्तापना, राग का कर्तापना, अरे! बन्ध और मोक्ष को कर्तापना कथंचित्, तो अनेकान्त कहलाये – ऐसा नहीं है। आहा...हा...!

भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाववाला होने से जानने का काम करता है। **–जानने का स्वभाववाला होने से...** जानने का काम करता है। आहा...हा...! परन्तु वह बन्ध को नहीं करता। राग को, बन्ध को नहीं करता तथा राग को वह ज्ञान भोगता नहीं। बन्ध को ज्ञान जानता है। जानने का स्वभाव होने से जानता है, इतना कहते हैं परन्तु उस राग को करे और उसे भोगे – ऐसा इसका स्वरूप नहीं है। आहा...हा...! पर का करना तो कहीं रह गया। जवाहरात का... आहा...हा...! हीरा, माणिक, जवाहरात, कपड़े, इन एक रजकणमात्र को... रजकण से लेकर पूरी दुनिया को देखे परन्तु एक रजकण को करे या राग को करे और भोगे (– ऐसा नहीं है) जानने के सम्बन्धमात्र से करने और भोगने का सम्बन्ध हो जाये,... उसे जाने परन्तु करे नहीं। बन्ध हो, परज्ञेयरूप से बन्ध को जाने; बन्ध को करे नहीं। आहा...हा...! ज्ञानावरणीय कर्म से ज्ञान रुकता है–गोम्मटसार में तो सर्वत्र यह आता है। आठ कर्म से ऐसा होता है और आठ कर्म से ऐसा होता है और आठ कर्म से यह होता है – यह तो निमित्त का ज्ञान कराने को (कहा है) आहा...हा...!

यहाँ तो केवल ज्ञानस्वभाव **केवल ज्ञानमात्र....** ज्ञानमात्र कहने से ज्ञान अकेला नहीं। ज्ञानमात्र कहने से दूसरे अविनाभावी गुण हैं परन्तु ज्ञानमात्र कहने से राग को और पर

को करता नहीं, इसलिए 'मात्र' कहा है। आहा...हा...! यह बोले नहीं, हिले नहीं... आहा...हा...! दूसरे को शिक्षा दे नहीं, दूसरे से शिक्षा ले नहीं। देखो! यहाँ तो यह आया। कल दोपहर में तो यह आया था – गुरु के वचनों को पाकर... वह तो मात्र सुदृष्टि का उपदेश दिया, वह इसने ले लिया। सुदृष्टि को कर लिया – इतनी बात कहने के लिये कही।

यहाँ तो कहते हैं **केवल ज्ञानमात्रस्वभाववाला (–जानने का स्वभाववाला) होने से कर्म के बन्ध को....** करता नहीं, जानता है। शास्त्र में आवे कि चौथे गुणस्थान में इतनी प्रकृति होती है, सत्ता होती है, इतना उदय होता है, इतना वेदन। अन्दर वेदनेयोग्य अर्थात् अनुभाग होता है परन्तु उसे जाने। आहा...हा...! चौथे गुणस्थान में आठ प्रकृति में से कर्म की इतनी प्रकृति होती है, इतनी छूटती है, इतनी बँधती है, इतनी सत्ता में रहती है, इतनी उदीरणा होती है, इतना उदय आता है, यह सब बात आती है, परन्तु इसे जाने। आहा...हा...! अरे! नजदीक की चीज कर्म है, उसके उदय को भी जाने, तो परचीज को करे और यह करना, (वह तो कहीं रह गया)। आहा...हा...! आत्मा चले, आत्मा बोले, आत्मा पर के टुकड़े करे, पर का चूरा करे, मदद करे, पर से मदद ले – यह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहा...हा...!

इस **बन्ध को तथा मोक्ष को....** आहा...हा...! ज्ञान तो मोक्ष को भी नहीं करता। आहा...हा...! बात बहुत ऊँची है। 320 गाथा! बन्ध को करे और मोक्ष को करे, यह भी नहीं। बन्ध को भले न करे परन्तु मोक्ष को करे न? मोक्ष (तो) पूर्ण दशा है। कहते (हैं) नहीं; उस काल में वह पर्याय होती ही है, उसे करे क्या? करे तो, न हो उसे करे। जिसकी स्थिति न हो, उसे करे, उसे करना कहा जाए परन्तु जाननेवाले ज्ञानी को, मोक्ष की पर्याय है – ऐसा जाने, बस। है, उसे जाने। आहा...हा...! मोक्ष की पर्याय को भी करे नहीं, क्योंकि इसमें एक भाव नाम का गुण है कि जिस गुण के कारण, दृष्टि जो द्रव्य पर पड़ी और द्रव्य का स्वीकार हुआ, वहाँ जो बन्ध का रागादि है... आहा...हा...! उसे वह करता नहीं है। आहा...हा...! उस गुणस्थान में उसके प्रमाण में कर्म का उदय आता है और उदीरणा होती है, उसे वह करता नहीं है। आहा...हा...! अन्तिम हद है। ज्ञानस्वभाव, ज्ञानस्वभाव... बहुत ही खींचकर तू कहे तो वह जाने-देखे – ऐसा उसे कहते हैं। वस्तुतः तो पर को जानना-

देखना, वह व्यवहार है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : जानता नहीं, वह व्यवहार है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर को जानता है, यह व्यवहार है करने और भोगने की तो बात ही नहीं है। स्वयं अपने को जानता है, यह निश्चय। आहा...हा...! परन्तु कहते हैं कि तू बहुत ले जा तो देखे-जाने, इतने तक रख। आहा...हा...! आत्मतत्त्व ज्ञानस्वरूपी भगवान, मोक्ष को करे, यह भी नहीं। आहा...हा...! पुरुषार्थ कहाँ गया वहाँ? कहते हैं कि वह जाने, यही उसका पुरुषार्थ है। जाने कि यह मोक्ष हुआ, उस समय उस काल में वही पर्याय, शुभभाव के कारण... शुभभाव का स्वभाव है, शुभ-अशुभ आदि है न? उसके कारण पर्याय होती ही है, करूँ तो हो, विकल्प करूँ तो हो... करूँ तो हो। आहा...हा...! ऐसा स्वरूप में नहीं है। आहा...हा...!

वह बन्ध को नहीं करता और मोक्ष को भी नहीं करता। आहा...हा...! क्योंकि मोक्ष की पर्याय उस काल में वह होनी ही है। होनी है, उसे करे... होनी है, होती है... होती है... होती है... उसे करे अर्थात् क्या? आहा...हा...! ज्ञान प्रभु! पर्याय होती है अथवा है; है, उसे करना क्या? मोक्ष की पर्याय है। जाननेवाले को वह मोक्ष की पर्याय वहाँ है। है, उसे करना क्या? आहा...हा...! सत्, सत् को करना क्या? तो है, वह नहीं हो – ऐसा हो जाये। मोक्ष की पर्याय भी उस काल में होती है, वही उसका स्वभाव है। द्रव्यदृष्टि हुई, इसलिए उसके अन्तर में, गुण में ऐसा (भाव) नाम का गुण है; इसलिए वह पर्याय होती ही है। भाव नाम का गुण है कि वह मोक्ष की पर्याय उस काल में होती ही है। आहा...हा...! शुद्ध, उस भाव नाम के गुण के कारण पूरी द्रव्यदृष्टि हुई है। ऐसा सूक्ष्म है। उस-उस काल में वह पर्याय होती ही है अथवा 'है' अथवा 'सत्' है। सत् है। आहा...हा...! सत् है। सत् को करे? आहा...हा...! आहा...हा...! ऐसी बात है। अभी तो लोग कहीं बाहर में मानकर–मनवाकर (बैठे हैं)।

ज्ञाता रूप से जानता है, इतना भले कहें। उदय को जानता है, इतना कहें; इसके अतिरिक्त दूसरा तो कोई है ही नहीं। यहाँ तक आया कि उदय को जानता है, बस। इतनी ज्ञान की बात को सिद्ध किया। जाननेवाला आत्मा है, इस अपेक्षा से। आहा...हा...! उदय

को और निर्जरा को... आहा...हा...! निर्जरा को आत्मा करता नहीं। क्यों? कि उस समय अशुद्धता टलती है, शुद्धता बढ़ती है, कर्म खिरते हैं, यह निर्जरा के तीन प्रकार हैं। कर्म खिरना, एक बाह्य प्रकार; अशुद्धता का गलना, एक प्रकार; और शुद्ध का बढ़ना, एक प्रकार। इसी समय कहते हैं, ये तीनों हैं। ये एक समय में तीनों हैं। हैं उन्हें करे क्या? आहा...हा...! सूक्ष्म बात है। आहा...हा...!

यह सोने को और हीरे को घिसे। कहते हैं कि वह पर्याय तो वहाँ है। अब है, उसे यह करे – इसका अर्थ क्या? नहीं, उसे करे – ऐसा होता है। परन्तु वह पर्याय वहाँ है। आहा...हा...! सत् निर्जरारूप पर्याय है। यहाँ शुद्धता की वृद्धि वह निर्जरा; अशुद्धता का गलना, वह भी निर्जरा और कर्म का (खिरना वह भी) निर्जरा है परन्तु वास्तविक तो शुद्धता का बढ़ना, (वह निर्जरा है)। यहाँ यह कहते हैं कि शुद्धता का बढ़ना, वह भी उस काल में है। आहा...हा...! निर्जरा के प्रकार तीन; उसमें वास्तविक तो शुद्धता का बढ़ना, वह निर्जरा है। अशुद्धता का गलना, वह तो व्यवहारनय से; और कर्म का टलना, वह तो असद्भूत व्यवहारनय से (कहा जाता है)। आहा...हा...! परन्तु यहाँ तो शुद्धता का बढ़ना, वह भी उस समय वह है, बढ़ना वह है। आहा...हा...! शुद्ध उपयोग से वहाँ बढ़ती है, वह उस समय है। है उसे करना क्या? आहा...हा...!

मुमुक्षु : उत्पन्न होता है, वह भी नहीं लेना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्पन्न होता है, उसे भी करता नहीं, यह बात तो आयी। यह बात तो सिद्ध की है कि उपजता है न? वह उपजता है न? है, उसे उपजता है, उसे करना? सूक्ष्म बात है भाई! आहा...हा...! जो मोक्ष उपजता है, अरे! निर्जरा भी उपजती है, आहा...हा...! उपजती है, उसकी अस्ति तो है। अस्ति है, उसे करना है? सूक्ष्म बात है। आहा...हा...! निर्जरा को...

भाषा फिर कैसी है? **केवल ज्ञानमात्रस्वभाववाला (–जानने के स्वभाववाला) होने से....** यह वहाँ लिया। यहाँ लिया **मात्र जानता ही है।** अन्तिम, **मात्र जानता ही है।** वह निर्जरा को भी करता है... होती है, वहाँ करता है, यह किस प्रकार? मोक्ष भी होता है, उस समय में सत् है, उसरूप से वह क्रमबद्ध में है। यह सब क्रमबद्ध से उठाया है न? मोक्ष

की पर्याय क्रमसर के काल में होती है, उसे करना क्या? निर्जरा के काल में निर्जरा / शुद्धि की वृद्धि है, उसे करना क्या? आहा...हा...! ऐसी बात है। इसके बदले यहाँ तो कहते हैं पर का करना, पर की सहायता करूँ, मदद करूँ, सबको एक्य रखने के लिये एक-दूसरे की मदद करो तो एक्य रह सके। आहा...हा...! यह लोगों को ऐसे बाहर से मीठा लगता है, पराधीनता की दृष्टि है न? आहा...हा...! यहाँ कहते हैं वह दृष्टि तो विरुद्ध है।

यहाँ तो सत् है। जैसे त्रिकाली ज्ञानस्वभाव सत् है, जैसे त्रिकाली आत्मा सत् है, उसे करना क्या? उसी प्रकार वह-वह पर्याय उस-उस काल में वह सत् ही है। आहा...हा...! दोनों सत् हैं। यहाँ वस्तु त्रिकालीरूप से सत् है, निर्जरा और मोक्ष वह भी उस काल के समयरूप से सत् है। (सत्) है उसे करना क्या? आहा...हा...! गजब बात की है न! सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार है न! और वह भी, उसे जानने की पर्याय भी, वास्तव में निर्जरा को, मोक्ष को जानती है – ऐसा कहा; करती है – ऐसा नहीं कहा परन्तु फिर भी निर्जरा और मोक्ष के काल में वह ज्ञान की पर्याय भी उस प्रकार से वहाँ होने की ही है। मोक्ष को, निर्जरा को जाने – ऐसी ही पर्याय उस काल में होनी ही है। आहा...हा...! जरा सा सूक्ष्म है।

मुमुक्षु : सूक्ष्म आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म आया। आहा...हा...!

निर्जरा और मोक्ष की पर्याय तो है। है, उसे भले जाने – ऐसा कहना, परन्तु जानने की पर्याय भी उस काल में है। आहा...हा...! फिर इतना कहे कि पर को जानती है, इतना कहो। वह पर को जानती है, इस प्रकार ही है। वह ज्ञान की पर्याय जो सर्वविशुद्धज्ञान है, वह पर को जानती है, इस प्रकार ही वह है। वह पर है, इसलिए पर को जानती है – ऐसा भी नहीं है। आहा...हा...! ऐसा मार्ग है। सत् को सत्रूप से सिद्ध करते हैं। है, सत् है। आहा...हा...! उतना कहते हैं कि जानती है परन्तु जानती है, वह पर्याय भी सत् है। आहा...हा...! उसी प्रकार से, उसी समय में, उसे जानना – ऐसी पर्याय वह है, उसे जाने, इसलिए वह पर्याय उसे जानती है (ऐसा कहना) वह भी व्यवहार है। आहा...हा...! वह जानने की पर्याय भी उस काल में क्रमसर में उसे जाने ऐसा स्वयं अपनी पर्यायरूप है। आहा...हा...! सूक्ष्म बहुत है। आहा...हा...!

मुमुक्षु : भाव सत्य आया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चार बोल लिये। बाकी क्या रखा? बन्ध और मोक्ष। आहा...हा...! भावबन्ध द्रव्यबन्ध से तो भिन्न है परन्तु भावबन्ध को भी उसी प्रकार से वह वहाँ जानता है। राग बँधता है, राग होता है। उस-उस काल में वह होता है, उसे उस-उस काल में जानने का काम वह ज्ञान की पर्याय, उस काल में स्वयं से करती है। आहा...हा...! यह राग और बन्ध है।

सर्व गुणों को, अनन्त पर्यायों को, मोक्ष, निर्जरा, उदय आदि को उस समय में वह ज्ञान की पर्याय, उसे उस प्रकार से जाने, उस प्रकार स्वयं उत्पन्न होती है। इस प्रकार स्वयं स्वयं से स्वतन्त्र उत्पन्न होती है। आहा...हा...! अब यहाँ बाहर के लोगों को अटकना, उसे करना, उसे.... एक जगह सुना था, इन्दौर में पचास पण्डित एकत्रित हुए थे, उस समय यहाँ के विरोध की चर्चा रखी कि पर का कर्ता न माने, वह दिगम्बर जैन नहीं है। आहा...हा...! अरे...! प्रभु! तू क्या करता है तू? आहा...हा...! करता तो नहीं परन्तु वास्तव में तो उसका जाननेवाला भी नहीं है। जाननेवाला, जाननेवाले को जानते हुए, जाननेवाले को जाननेवाले को जानने की पर्याय सत् उत्पन्न होती है। परन्तु यहाँ इतना व्यवहार सिद्ध करना है कि मोक्ष और निर्जरा को जानता है। जानने की पर्याय और मोक्ष तथा बन्ध की पर्याय, निर्जरा की (पर्याय), वह भिन्न है। अनन्त पर्यायें एक समय में होती हैं, अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें अक्रम-अक्रम एक साथ होती है। आहा...हा...! यह निर्जरा की पर्याय को और मोक्ष की पर्याय को भी, उसी समय की पर्याय होती है, वह जानती है – ऐसा कहने में आता है। आहा...हा...! थोड़ा सूक्ष्म तो है, 320 (गाथा) इसे फिर उतारना था न?

मुमुक्षु : ..... कर्तापना तो सही जानने का....

पूज्य गुरुदेवश्री : जानना, यह जानना, वह भी करना, जानने को करना, जानने को करूँ, यह नहीं। वह जानने की पर्याय भी उस काल में सत्रूप से है और होती है। आहा...हा...! ऐसा है और उसमें से पूरी दुनिया में मैं करूँ... मैं करूँ... पूरे दिन यह धन्धा मैंने किया, इसका मैंने किया, इसका मैंने किया, मैंने इसे संभाला, लड़के को बड़ा किया, पाल-पोसकर पढ़ाकर (होशियार किया), सब गप्प है, यह तो कहते हैं। आहा...हा...!

जहाँ अपनी निर्जरा और मोक्ष की पर्याय... आहा...हा...! उसे भी जानने का काम; करने का नहीं, जानने का काम करे... आहा...हा...! यह पर का कुछ कर सके यह तो है ही नहीं। आहा...हा...! ऐसा सिद्ध करना है कि उस समय में उसका सत् है, उस प्रकार होता है। सत् है, उसमें तेरे हेतु की उसे क्या आवश्यकता है? इतना रख कि तू ज्ञान है और वह ज्ञान नहीं। इसलिए जानने का काम करे। आहा...हा...! ऐसा मार्ग! कहाँ ले जाना इसे?

यहाँ कहे, एकेन्द्रिय की दया पालो, दो इन्द्रिय की दया पालो, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय की, पञ्चेन्द्रिय की.... आहा...हा...! हिंसा न करो, यह सब व्यवहार के वचन हैं। आहा...हा...! उस समय हिंसा होनी नहीं थी। आहा...हा...! उसे ज्ञान जानता है। आहा...हा...! वह ज्ञान भी, हिंसा होनी नहीं थी, यह अपेक्षा रखकर ज्ञान उत्पन्न हुआ है – ऐसा नहीं है। अनन्त पर्यायें एक समय में उत्पन्न होती हैं, उसमें एक पर्याय को दूसरी पर्याय की भी अपेक्षा नहीं है। आहा...हा...! ऐसा उसका सत्स्वरूप है। 320 गाथा, आहा...हा...! भाई ने रखा है न? जयसेनाचार्य की टीका में कि भाई! योगीन्द्रदेवने भी ऐसा कहा है कि आत्मा, बन्ध और मोक्ष को करता नहीं। यह गाथा रखी है न? है न? इसमें है या नहीं? इसमें नहीं होगी। वह पृष्ठ है। है? अभी क्या कहा था?

मुमुक्षु : योगीन्द्रदेव की गाथा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अन्त में है, इस ओर। श्री योगीन्द्रदेवने भी कहा है कि

ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ।
जिउ परमत्थें जोइया जिणवरु एउँ भणेइ॥68॥

जिनवर तीन लोक के नाथ जिनेश्वर ऐसा कहते हैं। दूसरी भाषा क्या कही जाये? कहते हैं ऐसा कहना, वाणी वाणी के कारण आती है परन्तु उस वाणी का निमित्त है – ऐसा कहने में आता है। वाणी है, वह वहाँ भूतार्थ उस समय की उसकी पर्याय है। योग्यता से वह वाणी आती है। भगवान हैं, इसलिए आती है – ऐसा भी नहीं है। आहा...हा...! परन्तु भाषा क्या कही जाये? बड़े का नाम देना हो तब (ऐसा कहा जाता है) **जिणवरु एउँ भणेइ** हे योगी! योगी अर्थात् योग को आत्मा में जोड़नेवाला। आहा...हा...! परमार्थ से जीव उत्पन्न भी नहीं होता। परमार्थ से जीव, निर्जरा और मोक्षरूप भी नहीं उत्पन्न होता और मरता भी

नहीं। आहा...हा...! और बन्ध-मोक्ष करता नहीं – ऐसा श्री जिनवर कहते हैं। दृष्टान्त जिनवर का दिया। जिनवर ऐसा कहते हैं। बन्ध और मोक्ष को करता नहीं – ऐसा जिनवर कहते हैं। आहा...हा...!

इसका अर्थ यह हुआ कि आत्मा जो स्वभाव है, उसकी ओर जहाँ जानने का लक्ष्य हुआ (अर्थात्) सब छूट गया, बस। फिर जो है वह जाने। वह निर्जरा को जाने, मोक्ष को जाने। साधक के समय निर्जरा को जाने, साध्य के समय मोक्ष को जाने। आहा...हा...! वह जानने की पर्याय भी वैसी ही स्वयं उस काल में उस प्रकार की स्वयं से उत्पन्न होती है। आहा...हा...! जानने की पर्याय भी, बन्ध और मोक्ष और निर्जरा को, उदय को – जिनवर कहते हैं कि यह आत्मा नहीं करता, जानता ही है। वह जानता है, वह ज्ञान की पर्याय भी उस काल में उसी प्रकार से स्वयं से उत्पन्न होने का काल था, वह हुई है। आहा...हा...! जरा कठिन काम है।

.... यह भावना अर्थात् ज्ञान की पर्याय आदि, श्रद्धा की पर्याय, चारित्र की पर्याय जो भावनारूप प्रगट हुई, वह आंशिक शुद्धिरूप परिणति है। वह निर्विकार स्वसंवेदन लक्षण क्षायोपशमिकज्ञानरूप होने से, वह क्षयोपशमज्ञान है। वस्तुरूप से भले श्रद्धा उपशमरूप हो, क्षयोपशमरूप हो, क्षायिकरूप हो परन्तु उसे जाननेवाला ज्ञान, क्षयोपशमज्ञान है। उसे जाननेवाला क्षायिकज्ञान नहीं। क्या कहा समझ में आया? आहा...हा...! परमार्थ से वह उपजता भी नहीं, अर्थात् किसमें? पर्याय में उपजता नहीं, वह पर्याय को व्यय करता नहीं। आहा...हा...!

प्रवचनसार की 101 गाथा में ऐसा कहा कि जो पर्याय उत्पन्न होती है, उसे ध्रुव की अपेक्षा नहीं। जानने की अपेक्षा से यहाँ, जानता है, यह आया, ऐसा ज्ञेय है; इसलिए यहाँ – ऐसा ज्ञान होता है, ऐसी अपेक्षा नहीं है। जानने के ज्ञान में जो ज्ञात होने योग्य ठीक सामने आया, इसलिए उसे यहाँ जानता है, इतनी अपेक्षा से ज्ञान की उत्पत्ति हुई – ऐसा नहीं है। आहा...हा...!

यहाँ यह कहा, देखो न! आहा...हा...! एकदेश व्यक्तिरूप है। क्षयोपशमज्ञान की

अपेक्षा से। भले क्षायिकसमकित हुआ परन्तु ज्ञान की अपेक्षा से क्षयोपशमज्ञानरूप है। **तथापि ध्याता पुरुष ऐसा भाता है कि सकल निरावरण अखण्ड...** आहा...हा...! भगवान आत्मा सकल निरावरण। सकल निरावरण, पूर्ण निरावरण। अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, अखण्ड है और एकरूप है। प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, ज्ञान में प्रत्यक्ष प्रतिभासमय ज्ञात हो, ऐसा है। **अविनश्वर शुद्ध पारिणामिकपरमभावलक्षण....** शुद्ध पारिणामिक सहज स्वभावलक्षण **निज परमात्मद्रव्य...** आहा...हा...! निज परमात्मद्रव्य, वह मैं हूँ। पर तो नहीं, राग नहीं, पर्याय नहीं। आहा...हा...! पर्याय ऐसा जानती है कि सकल निरावरण अखण्ड एक ज्ञानस्वरूप अविनश्वर, परम **पारिणामिकभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य वह मैं हूँ।** पर्याय कहती है कि मैं पर्याय हूँ – ऐसा भी नहीं। आहा...हा..! ऐसी बात है।

निज परमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ। वही मैं हूँ। जो सकल निरावरण है, वही मैं हूँ। एकान्त कर दिया। कथंचित् ऐसा और कथंचित् ऐसा – यह नहीं रखा। **जो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय...** ज्ञान की पर्याय में उतना ही पूरा भासित होता है। आहा...हा...! वह प्रत्यक्ष ज्ञान में ज्ञात हो – ऐसा भगवान आत्मा **अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ, परन्तु ऐसा नहीं भाता कि मैं खण्ड ज्ञान हूँ।** क्षयोपशमज्ञानरूप भी मैं हूँ, ऐसा नहीं भाता – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

यहाँ तो कहा कि क्षयोपशमज्ञान में या क्षायिकज्ञान में ज्ञात होता है। जो है, वैसा ज्ञात होता है परन्तु फिर भी धर्मी, क्षयोपशमज्ञान को भी नहीं भाता। उसकी दृष्टि द्रव्य पर होती है। आहा...हा...! यह 320 गाथा पढ़ी गयी है, बहुत व्याख्यान हो गये हैं। यह तो योगीन्द्रदेवने भी ऐसा कहा है कि **ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ।** आहा...हा...!

अकेला ज्ञानस्वरूप भगवान पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण ज्ञान, उसे ज्ञान प्रधानता से पूरे आत्मा को लिया, क्योंकि उस पर्याय में अनन्त पर्याय और द्रव्य-गुण ज्ञात होते हैं। उस पर्याय को भी मैं उत्पन्न करता हूँ – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! वह भी उस काल में है। है, उसे भी मैं जानता हूँ। आहा...हा...! ऐसा यहाँ कहा। **बन्ध को तथा मोक्ष को और कर्म के उदय को तथा निर्जरा को मात्र जानता ही है।** वह निर्जरा करता नहीं, मोक्ष करता नहीं।

गजब बात है। उसके बदले यहाँ तो पर का करना, दया पालना, पर की दया पालना, पर को मदद करना, पर को... कुछ कर दे, वह अत्यन्त तत्त्व विरुद्ध है परन्तु अब क्या हो? विशेष पूर्ण हुआ। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)